विक्रम संवत-२०३६, भाद्र शुक्ल - ६, सोमवार, तारीख १५-९-१९८०
वचनामृत -३८४, ३८७, ३९० प्रवचन-३४

आज पर्यूषण का दूसरा दिन है। मार्दव-निर्मानता। मार्दव नाम का धर्म है। वह होता है तो चारित्र का भेद और चारित्र, सम्यग्दर्शनपूर्वक होता है। जहाँ सम्यग्दर्शन नहीं है... सूक्ष्म बात है। अन्तर आत्मा आनन्दकन्द चिद्घन, उसके अनुभव में चीज़ आयी, उस चीज़ की माहात्म्य की कीमत से उसको मार्दव अर्थात् निर्मानता रहती है। किसी भी चीज़ के कारण उसको मान नहीं आता। वह कहते हैं।

उत्तमणाणपहाणो, उत्तमतवयरणकरणसीलो वि।
अप्पाणं जो हीलदि, मद्दवरयणं भवे तस्स॥३९५॥

अन्वयार्थ :- जो मुनि उत्तम ज्ञान से तो प्रधान हो... चार-चार ज्ञान प्रगट हुआ हो, आहाहा! बारह अंग का ज्ञान प्रगट हुआ हो, तो भी निर्मानता है। क्योंकि मेरी पर्याय पामर है। बारह अंग का ज्ञान, वह भी पामरता है। स्वामी कार्तिकेय में ३१३ गाथा में कहा है, ३१३ गाथा में। धर्मी जीव अपने को ज्ञान का भान है और अपनी दशा में अल्पज्ञता है, वस्तु पूर्ण भरी है। परन्तु पर्याय में अभी पामरता है। क्योंकि कहाँ केवलज्ञानादि, उसके समक्ष अपनी पर्याय पामर है। आहाहा! ऐसे अपने को पामर मानते हैं।

सम्यग्दृष्टि, साधु सन्त सच्चे भावलिंगी अपना पूर्ण प्रभु भगवान आत्मा को तो भगवान मानते हैं, परन्तु पर्याय में पामरता मानते हैं। आहाहा! कहाँ केवलज्ञान, कहाँ केवलदर्शन और कहाँ मेरी दशा! ऐसे अपने को पामरता, निर्मानता, मार्दवता प्रगट होती है। आहाहा! बारह अंग का ज्ञान हो। चार ज्ञान प्रगट हुआ हो तो भी कहते हैं, **अप्पाणं हीलदि** आत्मा को निन्दे। आहाहा! अभिमान न हो जाए, थोड़ा जानपना किया कि बाहर प्रसिद्धि में आये... आहाहा! **अप्पाणं हीलदि** पाठ है।

मद्दवरयणं भवे तस्स। आत्मा को चाहे जितना शास्त्रज्ञान हो या चारित्र की क्रिया

हो, परन्तु पूर्ण सर्वज्ञ के समक्ष अपनी पर्याय को पामरता जानकर मान होता नहीं। निर्मान और मार्दव गुण होता है। मार्दव गुण आज पर्यूषण का दिन है। मार्दव आदि चारित्र का भेद है। चारित्र, सम्यग्दर्शनसहित होता है। उसमें यह चारित्र का भेद तो सम्यग्दर्शन (में) अपनी ऋद्धि जिसने देखी, अन्तर में ज्ञानादि अनन्त ऋद्धि जिसने श्रद्धा करके मानी, उसकी पर्याय में चाहे जितना विकास हो तो भी केवलज्ञान के समक्ष वे अपने को पामर मानते हैं। ऐसे निर्मानता, मार्दवता, नरमाई प्रगट होती है।

चार ज्ञान और चौदह पूर्व की रचना गौतमस्वामी गणधर अन्तर्मुहूर्त में रचना करे। वह भी अपनी पर्याय में सर्वज्ञ भगवान के समक्ष पामर मानते हैं। आहाहा! तो किसका मद करना? किसका मान करना? ऐसा निर्मान। अपनी आत्मा को **हीलदि** लिखा है यहाँ। चाहे जितनी दशा हो, पूर्ण सर्वज्ञ नहीं। जब तक पूर्ण केवलज्ञान नहीं है, तब तक अपने को निन्दते हैं-निन्दा करते हैं। अरे..! आत्मा! कहाँ तेरी ऋद्धि! तेरी ऋद्धि का पार नहीं अन्दर भगवान! और तेरी पर्याय में तो पामरता है। ऐसे अपने के निन्दते हैं और अपनी पर्याय में निर्मानता से पामरता मानते हैं। आहाहा! उसका नाम निर्मान गुण है।

अपने यहाँ ३८४, वह चलता है न? बाकी है। आहाहा! **सर्व निधान के प्रगट अंश को वेदकर...** आहाहा! कहते हैं, प्रभु! तेरे में तो अनन्त-अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति भरी है न, नाथ! उसमें से थोड़ा एक अंश तो वेदन कर। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! क्रियाकाण्ड से यह चीज़ मिलती नहीं। आहाहा! अन्तर में **सर्व निधान के प्रगट अंश को वेदकर...** अन्त में है, अन्त में। **तू तृप्त हो जायेगा। पश्चात् पुरुषार्थ करते ही रहना,...** आहाहा! अन्तर स्वरूप का भान हुआ कि मैं तो आनन्द का निधान, आनन्द का खजाना। मेरी चीज़ तो अतीन्द्रिय आनन्द का खजाना-निधान है। तो जब तक पूर्ण आनन्द प्रगट न हो, तब तक पुरुषार्थ करते ही रहना। आहाहा! अन्तर में पुरुषार्थ करते ही रहना, जब तक पूर्ण स्वभाव न प्रगट हो।

जिससे पूर्ण निधान का भोक्ता होकर... आहाहा! है? **पश्चात् पुरुषार्थ करते ही रहना, जिससे पूर्ण निधान का भोक्ता होकर...** आया है? माणिकचन्दजी! अन्तिम पंक्ति है। आहाहा! **पश्चात् पुरुषार्थ करते ही रहना,...** आत्मा का भान हुआ, निधान अन्दर भरा है, तो भी पुरुषार्थ तो अन्दर में करते ही रहना। **जिससे पूर्ण निधान का भोक्ता होकर...**

पूर्ण निधान का पर्याय में-अवस्था में भोक्ता होकर **तू सदाकाल परम तृप्त-तृप्त रहेगा।** आहाहा! वह तृप्ति कहीं बाहर से आती नहीं। तृप्ति कहीं बाहर से होती नहीं। तृप्ति तो अन्दर में आनन्द, आनन्द जो पूर्णानन्द प्रभु, उसका पुरुषार्थ स्वभाव में करते-करते जहाँ पूर्ण दशा प्रगट हुई, तृप्त-तृप्त हुआ, वह कृतकृत्य हुआ। आत्मा तो कृतकृत्य तो था ही, पर्याय में कृतकृत्य हो गया। आहाहा! ३८४ (पूरा हुआ)। अब, ३८७।

आत्मा उत्कृष्ट अजायबघर है। उसमें अनन्त गुणरूप अलौकिक आश्चर्य भरे हैं। देखने जैसा सब कुछ, आश्चर्यकारी ऐसा सब कुछ, तेरे अपने अजायबघर में ही है, बाह्य में कुछ नहीं है। तू उसी का अवलोकन कर न! उसके भीतर एक बार झाँकने से भी तुझे अपूर्व आनन्द होगा। वहाँ से बाहर निकलना तुझे सुहायेगा ही नहीं। बाहर की सर्व वस्तुओं के प्रति तेरा आश्चर्य टूट जाएगा। तू पर से विरक्त हो जाएगा॥३८७॥

३८७। नीचे है। **आत्मा उत्कृष्ट अजायबघर है।** है? ३८७। है? निकला? ३८७। आत्मा... ३८६ के नीचे। आत्मा अजायबघर है। आहाहा! जिसमें चमत्कारिक चीज़ें पड़ी हैं। अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि अनन्त.. अनन्त.. अनन्त अजायबघर है। **उसमें अनन्त गुणरूप अलौकिक आश्चर्य भरे हैं।** आहाहा! तेरे में प्रभु..! आहाहा! आचार्य तो प्रभु कहकर बुलाते हैं। समयसार की ७२ गाथा में आत्मा को भगवान.. ऐसा कहा। आहाहा! समयसार -७२ गाथा। प्रभु! तेरी पर्याय में जो पुण्य और पाप का भाव होता है, वह तो मलिन है। शुभ-अशुभभाव तो मलिन है। तू तो भगवान है न! ऐसा कहा है। यहाँ भी वह कहा कि, **उसमें अनन्त गुणरूप अलौकिक आश्चर्य भरे हैं।** आहाहा!

देखने जैसा सब कुछ,... वह ना? **देखने जैसा सब कुछ, आश्चर्यकारी ऐसा सब कुछ,...** देखने जैसा सब कुछ और आश्चर्यकारी सब कुछ। आहाहा! **तेरे अपने अजायबघर में ही है,...** आहाहा! यह तो अलौकिक बात है। रात को बहिन थोड़ा-थोड़ा बोले थे। उसमें बहिनों ने गुप्तता से लिख लिया। उनको तो मालूम भी नहीं था। आहाहा! क्या कहा? **देखने जैसा सब कुछ,...** जो चीज़ है और **आश्चर्यकारी ऐसा सब कुछ, तेरे**

अपने अजायबघर में ही है,... आहाहा! तेरे अन्तर में आनन्दघर, अनन्त गुणरत्न से भरा पड़ा है, प्रभु! आहाहा! तुझे तेरी महिमा आयी नहीं। और पर की महिमा अन्तर में से छूटी नहीं। तो पर की महिमा छूटे बिना अन्तर में महिमा आती नहीं। आहाहा! यह तो मूल चीज़ है। यह कोई ऊपर-ऊपर की चीज़ नहीं है।

बाह्य में कुछ नहीं है। आहाहा! तेरी चीज़ में सब है। अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त प्रभुता—ऐसी-ऐसी अनन्त शक्ति का भण्डार भगवान आत्मा है। जो सब कुछ देखने लायक और आश्चर्य करने लायक हो, वह सब कुछ तेरे में है। आहाहा! बाहर में कुछ देखने लायक या आश्चर्यकारी कोई वस्तु है नहीं। आहाहा! **तू उसी का अवलोकन कर न!** प्रभु! आहाहा! तेरे में अनन्त-अनन्त गुणरत्न का भण्डार-खजाना भरा है। वह तूने कभी देखा नहीं, कभी नजर की नहीं, कभी अवलोकन किया नहीं और बाहर में भटकता रहता है। एक बार अवलोकन तो कर। आहाहा! यह करने की चीज़ है। लगे दु:खी। यहाँ तो वीतरागभाव है। आहाहा!

क्योंकि आत्मा वीतरागभाव से भरा पड़ा है। वीतरागभाव का पिण्ड आत्मा है। आहाहा! कभी सुना नहीं, कभी नजर की नहीं। क्रियाकाण्ड के कारण, बाह्य प्रवृत्ति के कारण अन्दर चीज़ क्या है, वर्तमान में तो सुनना मिलना मुश्किल हो गया है। अन्तर अजायबघर। आहाहा! उसी का अवलोकन (कर), **बाह्य में कुछ नहीं है। तू उसी का अवलोकन कर न! उसके भीतर एक बार झाँकने से...** आहाहा! प्रभु! तेरी चीज़ ऐसी कोई है कि क्रियाकाण्ड तो तुच्छ है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि सब ... है, राग है। वह सब तो जहर है। आत्मा अमृत का सागर प्रभु, उससे विरुद्ध भाव है। आहाहा! अरे! कभी विचार भी किया नहीं। कभी अन्तर में क्या चीज़ है, सुना भी नहीं और बाहर भटकता रहता है। वस्तु अन्दर है और खोजने बाहर जाता है। बाह्य क्रियाकाण्ड से अन्दर मिले (ऐसा माना)। ऐसा अनन्त-अनन्त काल गया, प्रभु! आहाहा!

भीतर एक बार झाँकने से भी तुझे अपूर्व आनन्द होगा। आहाहा! तू एक बार अन्दर में देख। भाई! यह तो अलौकिक बातें हैं! आहाहा! एक बार भी अनन्त काल में एक बार तू देख तो सही, प्रभु! बाहर तो देख-देखकर जिन्दगी व्यतीत की, अनन्त जिन्दगी गयी। एक बार... आहाहा! **झाँकने से भी तुझे अपूर्व आनन्द होगा।** आहा..!

वहाँ से बाहर निकलना तुझे सुहायेगा ही नहीं। ऐसी चीज है प्रभु तेरी। आहाहा! तेरी चीज़ ऐसी अन्दर है कि उस पर झुकने से बाहर निकलना तुझे रुचेगा ही नहीं। आहा..! आनन्द का नाथ! बाहर निकलने से तो राग होता है और राग तो जहर है। चाहे तो शुभराग हो, दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा आदि है तो राग और जहर। आहाहा! क्यों? कि भगवान आत्मा तो अमृतस्वयप अमृतसागर है। उससे यह परिणाम विरुद्ध है। तो अमृत से विरुद्ध है, वह जहर है। आहा..! और उससे लाभ होगा, ऐसा मानता है। वह तो मिथ्यात्व भाव है। आहाहा! बाह्य क्रियाकाण्ड से अन्दर में कुछ लाभ होगा, वह तो मिथ्यादृष्टि (है), जैन नहीं। उसको जैन की खबर नहीं।

जैन उसको कहते हैं... आहाहा! 'घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन।'

घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन।
मत मदिरा के पान सो मतवाला समझै न।

बाहर के अभिमानी, बाह्य चीज़ में अधिकपना माननेवाला, अन्तर की चीज़ को अधिकपने देखने का अवसर लेते नहीं। आहाहा! सेठ! ऐसी बात है, प्रभु! यहाँ तो ऐसी बात है। माणिकचन्दजी! वहाँ सागर में मिले ऐसा नहीं है वहाँ कहीं। आहाहा! ओहो..!

वहाँ से बाहर निकलना तुझे सुहायेगा ही नहीं। बाहर की सर्व वस्तुओं के प्रति तेरा आश्चर्य टूट जाएगा। आहाहा! तेरी चीज़ में अन्तर दृष्टि देखने से बाहर की चीज़ की विस्मयता, आश्चर्यता टूट जाएगी। आहाहा! अरबों रुपये और चक्रवर्ती का पद हो, इन्द्र का पद हो परन्तु अन्तरदृष्टि देखने से सम्यग्दर्शन में तुझे उस चीज़ का आश्चर्य नहीं लगेगा। आहाहा! तेरी चीज़ ही आश्चर्यकारी है। अलौकिक अद्‌भुत निधान है। उसके समक्ष तुझे कोई चीज में विस्मयता आयेगी, ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसी विस्मयकारी चीज़ है। आहाहा! यह तो अभी प्रथम बात है, यह तो सम्यग्दर्शन की बात है। चारित्र तो सम्यग्दर्शन के बाद। सम्यग्दर्शन न हो, वहाँ चारित्र कहाँ है? आहा..! सम्यग्दर्शन होने के बाद अन्दर चारित्र (होता है)। चारित्र-चरना, चरना अर्थात् रमना। परन्तु किसमें? जो चीज़ देखी है उसमें। परन्तु जो चीज़ देखी नहीं, उसमें रमना कहाँ आया? आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी आनन्द का पिण्ड प्रभु, जिसने उसको देखा ही नहीं, वह उसमें रमे कहाँ से? चारित्र कहाँ से होगा? आहाहा! ऐसी चीज़ है।

बाहर की सर्व वस्तुओं के प्रति तेरा आश्चर्य टूट जाएगा। तू पर से विरक्त हो जाएगा। आहाहा! भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का स्वामी। उसके अनन्त गुण को रहने के लिये कहीं अनन्त प्रदेश नहीं चाहिए। आहाहा! असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण भरे हैं। अरूपी स्वभाव तेरी नजर गयी नहीं, इसलिए तेरे निधान की महिमा, निधान की कीमत आयी नहीं। और उस निधान की कीमत आये बिना पर की कीमत हटेगी नहीं। आहाहा! पर की कीमत, बहुमान अन्तर की चीज़ का बहुमान आने से बाह्य चीज़ की विस्मयता हट जाएगी। आहाहा!

मुमुक्षु :- जब तक अपनी आत्मा में न आये, तब तक बाहर की महिमा दिखेगी।

पूज्य गुरुदेवश्री :- महिमा अन्दर, अनन्त काल हुआ, उसे यह चीज़ क्या है, क्रियाकाण्ड की महिमा भी (है), उसको इस चीज़ की महिमा नहीं आती है, जब तक आती है। राग, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा वह सब विकल्प राग है। अपनी चीज़ की महिमा न आवे, तब तक उस राग की महिमा नहीं जाती। आहाहा! ऐसी चीज़ है, प्रभु! दुनिया से तो अन्तर है। मार्ग तो यह है परमसत्य। आहाहा!

तू पर से विरक्त हो जायेगा। आहाहा! ३८७ (पूरा) हुआ। उसके बाद ३८८ न?

मुनिराज को शुद्धात्मतत्त्व के उग्र अवलम्बन द्वारा आत्मा में से संयम प्रगट हुआ है। सारा ब्रह्माण्ड पलट जाये, तथापि मुनिराज की यह दृढ़ संयमपरिणति नहीं पलट सकती। बाहर से देखने पर तो मुनिराज आत्मसाधना के हेतु वन में अकेले बसते हैं, परन्तु अन्तर में देखें तो अनन्त गुण से भरपूर स्वरूपनगर में उनका निवास है। बाहर से देखने पर भले ही वे क्षुधावन्त हों, तृषावन्त हों, उपवासी हों, परन्तु अन्तर में देखा जाये तो वे आत्मा के मधुर रस का आस्वादन कर रहे हैं! बाहर से देखने पर भले ही उनके चारों ओर घनघोर अन्धेरा व्याप्त हो, परन्तु अन्तर में देखो तो मुनिराज के आत्मा में आत्मज्ञान का उजाला फैल रहा है। बाहर से देखने पर भले ही मुनिराज सूर्य के प्रखर ताप में ध्यान करते हों, परन्तु अन्तर में वे संयमरूपी कल्पवृक्ष की शीतल छाया

में विराजमान हैं। उपसर्ग का प्रसंग आये, तब मुनिराज को ऐसा लगता है कि—'अपनी स्वरूपस्थिरता के प्रयोग का मुझे अवसर मिला है; इसलिए उपसर्ग मेरा मित्र है।' अन्तरंग मुनिदशा अद्भुत है; वहाँ देह में भी उपशमरस के ढाले ढल गये होते हैं॥३८८॥

३८८ है। ३८८-३८९। किसी ने लिखा है कि यह पढ़ना। **मुनिराज को...** ३८८। **शुद्धात्मतत्त्व के उग्र अवलम्बन द्वारा...** उसको मुनिराज कहते हैं। आहाहा! है? **मुनिराज को शुद्धात्मतत्त्व के उग्र अवलम्बन द्वारा...** आहाहा! शुद्धात्मतत्त्व निर्मलानन्द प्रभु, उसका उग्र अवलम्बन चलता है। उसका नाम मुनिपना है। कोई पंच महाव्रत या अट्ठाईस मूलगुण पाले, वह तो अनन्त बार अभव्य ने भी पाले और भव्य ने भी पाले। वह कोई चीज़ नहीं। आहाहा! **शुद्धात्मतत्त्व के उग्र अवलम्बन द्वारा आत्मा में से संयम प्रगट हुआ है।** आहाहा! देखो! कुछ बाहर से नहीं आया है। शुद्धात्मतत्त्व का भान तो पहले हुआ है, सम्यग्दर्शन; बाद में उग्र अवलम्बन (लिया है), भगवान पूर्णानन्द का वज्र बिम्ब ध्रुव, आहाहा! अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसके अवलम्बन द्वारा **आत्मा में से संयम प्रगट हुआ है।** संयम की व्याख्या। संयम कोई जीवदया पाले और नग्न हो जाए, पंच महाव्रत ले, वह कोई संयम नहीं है। आहाहा!

संयम तो यह है। **शुद्धात्मतत्त्व के...** तो पहले शुद्धात्मतत्त्व क्या है, उसका भान होना (चाहिए)। भान होने के बाद शुद्धात्मतत्त्व के उग्र अवलम्बन द्वारा आत्मा में से संयम प्रगट हुआ है। संयम-चारित्र ऐसे प्रगट होता है। चारित्र कोई बाह्य क्रिया नहीं है। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, वह कोई चारित्र नहीं है। आहाहा! अरे..! अनन्त-अनन्त काल व्यतीत हुआ, अनन्त काल चला गया, कभी उसने अपने निज तत्त्व की क्या चीज़ है, उस पर दृष्टि, महिमा आयी नहीं। बाहर की महिमा गयी नहीं और यहाँ की महिमा आयी नहीं। आहाहा! और बाहर में पैसे कुछ पाँच, पच्चीस करोड़ हो, उसमें करोड़, दो करोड़ का खर्च करे तो उसमें ऐसा हो जाए कि हमने कुछ धर्म किया। कुछ किया। कुछ किया नहीं, पाप किया। पैसा मेरा है और मेरा मानकर खर्च किया तो अजीव जड़ को अपना माना, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ है?

जड़ चीज़ को अपनी माना, जो अपन से त्रिकाल भिन्न है.. आहाहा! जिसका द्रव्य, गुण और पर्याय। द्रव्य अर्थात् वस्तु, गुण अर्थात् उसकी शक्ति, पर्याय अर्थात् अवस्था। अपने से जड़ के द्रव्य-गुण-पर्याय, लक्ष्मी आदि शरीरादि तीनों काल भिन्न है। आहाहा!

मुमुक्षु :- पैसे से काम चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- धूल भी चलता नहीं है। आहा..! अज्ञानी मानता है। वह तो बात चलती है। तीसरी गाथा में तो ऐसा भी कहा, समयसार में, कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। आहाहा! समयसार, तीसरी गाथा। '**एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे**' एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को कभी छुआ नहीं। आहाहा! आत्मा ने लक्ष्मी को कभी स्पर्श नहीं किया, छुआ नहीं। अरर..र..! यह मान्यता। समयसार, तीसरी गाथा है। समझ में आया? आहा..! तीसरी गाथा है न?

देखो! **धर्म,...** छह पदार्थ है न? **अधर्म-आकाश-काल-पुद्गल-जीवद्रव्यस्वरूप लोक में सर्वत्र जो कुछ जितने-जितने पदार्थ हैं, सभी निश्चय से (वास्तव में) एकत्वनिश्चय को प्राप्त होने से ही सुन्दरता को प्राप्त होते हैं, क्योंकि...** आहा..! **अपने अनन्त धर्मों के चक्र को (समूह को) चुम्बन करते हैं,...** प्रत्येक पदार्थ अपने में रही शक्ति और पर्याय, उसको चुम्बन अर्थात् स्पर्श करते हैं, स्पर्श करते हैं। **तथापि वे परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते,...** आहाहा! तीसरी गाथा। लक्ष्मी को छूता नहीं, स्पर्शता नहीं। शरीर को आत्मा छूता नहीं।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह होती ही नहीं। कभी सुना नहीं, जैन धर्म क्या है? आहाहा! जैन धर्म क्या है? ओहोहो!

अनन्त परमाणु का पिण्ड अँगुली है। उसमें एक परमाणु दूसरे परमाणु को छुआ नहीं। क्योंकि एक परमाणु में अपने में अस्ति है और पर से नास्ति है। आहाहा! तो पर से नास्ति है तो पर को छुए कहाँ से? आहाहा! अरे..! यहाँ तो कहा, सब आत्मा दूसरे को स्पर्श नहीं करते। आहाहा! अपनी पर्याय और अपनी शक्ति अर्थात् गुण, उसको प्रत्येक पदार्थ स्पर्श, चुम्बन करते हैं। आहाहा! **तथापि वे परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श नहीं**

करते,... संस्कृत टीका है। कुन्दकुन्दाचार्य के वचन हैं, भगवान की वाणी है, कुन्दकुन्दाचार्य के वचन हैं, उसकी टीका अमृतचन्द्राचार्य करते हैं। आहाहा! कौन माने? पागल ही कहे न! यह एक अँगुली दूसरी अँगुली को छूती नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- कुन्दकुन्द भगवान कह गये हैं, परन्तु उसका रहस्य तो आपने खोला है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- उसमें है या नहीं? आहाहा! हम तो वहाँ भी थे न! आहाहा! हम भी महाविदेह में थे, परन्तु अन्त में परिणाम ऐसे हो गये तो यहाँ काठियावाड़ में आ गये। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूए नहीं, स्पर्शे नहीं। अरेरे..! कौन माने? आहाहा! दाल, चावल, सब्जी को दाढ़ छूती नहीं। दाढ़ को आत्मा छूता नहीं। दाढ़ को आत्मा हिलाता नहीं। रोटी को आत्मा छूता नहीं। अरर..र..! यह सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ की वाणी है।

यहाँ कहते हैं, मुनिराज को शुद्धात्मतत्त्व... शुद्धात्मतत्त्व अन्दर वस्तु, (उसके) **उग्र अवलम्बन द्वारा...** अन्दर में उसका उग्र अवलम्बन लेते हैं। व्यवहार का अवलम्बन नहीं। आहाहा! रागादि व्यवहाररत्नत्रय आते हैं, परन्तु अवलम्बन नहीं। जानने-देखने लायक चीज़ है। यहाँ तो **शुद्धात्मतत्त्व के उग्र अवलम्बन द्वारा आत्मा में से संयम प्रगट हुआ है। सारा ब्रह्माण्ड पलट जाये,...** आहाहा! सारा जगत पलट जाए, **तथापि मुनिराज की यह दृढ़ संयमपरिणति नहीं पलट सकती।** क्योंकि संयम परिणति अन्तर शुद्धात्मतत्त्व में अन्तर में से, अवलम्बन में से प्रगट हुई है। आहाहा! उसका नाम संयम और चारित्र है। अट्ठाईस मूलगुण और पंच महाव्रत कोई चारित्र-संयम नहीं है। आहाहा! **मुनिराज की यह दृढ़ संयमपरिणति नहीं पलट सकती।** सारा ब्रह्माण्ड पलट जाए... आहाहा! ध्रुव भगवान आत्मा, उसके अवलम्बन से,... सारी दुनिया पलट जाए परन्तु उससे पलटते नहीं। आहाहा!

बाहर से देखने पर तो मुनिराज आत्मसाधना के हेतु वन में अकेले बसते हैं,... है? वन में अकेले रहते हैं। आहाहा! चक्रवर्ती राजा हो, तीर्थंकर हो, अकेले वन में चले जाते हैं। आहाहा! अन्दर कुछ देखा है, उसका साधन करने को निकलते हैं। महा अचिंत्य

पदार्थ! दुनिया में दूसरा है नहीं। ऐसी चीज़ को अन्दर में देखी, जानी, अनुभवी। आहाहा! उसका साधन करने को वन में अकेले चले जाते हैं। आहाहा! है ? **परन्तु अन्तर में देखें तो अनन्त गुण से भरपूर स्वरूपनगर में...** आहाहा! ऐसे बाहर में वन में हैं, अन्दर में स्वरूपनगर में हैं। स्वरूपनगर-आत्मा। अन्तर... अन्तर... अन्तर अनन्त ऋद्धि भरी है। आनन्द, शान्ति आदि स्वभाव की ऋद्धि अनन्त-अनन्त भरी है। आहाहा! **अन्तर में देखें तो अनन्त गुण से भरपूर स्वरूपनगर में उनका निवास है।** ऐसे देखो तो वन में हैं। वैसे देखो तो अन्दर में हैं। आहाहा! अरेरे..! ऐसी बातें।

यह तो जन्म-मरण रहित होने की बात है, भैया! बाकी चार गति पुण्यादि करे, वह चार गति में भटकेगा। आहाहा! सूकर में अवतार लेकर विष्टा खाये। आहाहा! सूकर-सूकर। जैसे अवतार अनन्त बार बार किये, प्रभु! अरबोंपति, करोड़ोंपति अनन्त बार हुआ। देव अनन्त बार नौवीं ग्रैवेयक में हुआ। परन्तु आत्मऋद्धि की दृष्टि कभी मानी नहीं, जानी नहीं। आहा..!

स्वरूपनगर... आहाहा! बाहर तो ऐसा दिखे के अकेले वन में हैं। **अन्तर में देखें तो अनन्त गुण से भरपूर स्वरूपनगर में उनका निवास है।** आहाहा! ऐसा मुनिपना है, सेठ! मुनिपना अकेली बाह्य क्रिया (करे) और नग्न हो जाए, जय नारायण करे, ऐसी यह चीज़ नहीं है। आहाहा! आहाहा! **स्वरूपनगर में उनका निवास है।**

बाहर से देखने पर भले ही वे क्षुधावन्त हों,... क्षुधावन्त दिखे। शरीर में **तृषावन्त हों, उपवासी हों, परन्तु अन्तर में देखा जाये तो वे आत्मा के मधुर रस का आस्वादन कर रहे हैं!** आहाहा! बाहर में शरीर में क्षुधा लगी हो, तृषा लगी हो। आहाहा! उपवासी हों, **परन्तु अन्तर में देखा जाये तो वे आत्मा के मधुर रस का आस्वादन कर रहे हैं!** अन्तर अमृत के स्वाद का अनुभव कर रहे हैं। आहाहा! अरे..! ऐसी आत्मा की बात सुनी नहीं। सुनने में आती नहीं। बाह्य प्रवृत्ति की बातें। यह करो, वह करो, यह बनाया, वह बनाया। आहाहा!

बाहर से देखने पर भले ही उनके चारों ओर घनघोर अन्धेरा व्याप्त हो,... आहाहा! बाहर से वन में... तीन बात ली। एक तो बाहर से वन में हैं, अन्दर में स्वरूपनगरी में हैं।

आहाहा! बाहर में क्षुधा-तृषा है, अन्दर में आत्मा का अन्तर आनन्द का मधुर रस लेते हैं। आहाहा! और तीसरा। तीसरा बोल। **उनके चारों ओर घनघोर अन्धेरा व्याप्त हो, परन्तु अन्तर में देखो तो...** आहाहा! **मुनिराज के आत्मा में आत्मज्ञान का उजाला फैल रहा है।** आहाहा! बाहर में अन्धेरा है, अन्तर में आत्मा का उजाला है। यह चीज़! परन्तु वह आत्मा कौन है (वह मालूम नहीं)। यह शरीरादि, बाहर के कारण अन्दर चीज़ कौन है, उसमें पैसा पाँच-पच्चीस करोड़, या दो-पाँच अरब मिले तो हो गया..! मानों हम बड़े हो गये। आहाहा!

मुमुक्षु :- पैसेवाले ऐसा कहते हैं कि हम कर्मयोगी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- कर्मयोगी-पापयोगी हैं। वह बात तो रात को सेठ को कही थी। दसलक्षणी पर्व में सब आये थे न? हुकमचन्दजी। दसलक्षणी धर्म पुस्तक है। आया है? उसमें तो ऐसा लिखा है कि पैसा पुण्य से मिलता है परन्तु पैसा, वह पाप है तो पैसेवाला पापी है। आहाहा! अरर..र..! उस पुस्तक में है, सेठ! उस पुस्तक में। क्यों? कि परमात्मा ने चौबीस प्रकार का परिग्रह कहा है। चौदह प्रकार का अन्तरंग-मिथ्यात्व, राग-द्वेष, अज्ञान अन्दर और दस प्रकार का बाह्य। धन, धान्य, लक्ष्मी, क्षेत्र आदि। चौदह प्रकार का अन्दर और दस प्रकार का बाह्य। चौबीस को भगवान ने परिग्रह कहा है और परिग्रह पाप है। आहाहा! मिला पुण्य से, परन्तु वर्तमान पाप है। आहाहा! और पाप का धनी होता है, वह पापी है। दुनिया कहती है कि, पुण्यवन्त है और भगवान कहते हैं, पापी है। आहाहा! दुनिया से बात अलग है, भाई! आहाहा! ऐसी बात उसने लिखी है। हुकमचन्दजी ने। दसलक्षणी पर्व और क्रमबद्ध, दोनों आ गये हैं। क्रमबद्ध छपा है। ज्ञानचन्दजी! आया है? क्रमबद्ध पुस्तक बहुत अच्छा (है), बहुत अच्छा है। वह भी पहले यहाँ से निकला है - क्रमबद्ध।

प्रत्येक द्रव्य में एक के बाद एक पर्याय होगी। फेरफार कोई करनेवाला है नहीं। आहाहा! जैसे नम्बर से एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ नम्बर (होते हैं), वैसे प्रत्येक द्रव्य में पहले नम्बर में जो पर्याय होती है, वह वहाँ होती है। दूसरे में दूसरी, तीसरी, चौथी, जहाँ होनेवाली है, वहाँ होती है। उसमें फेरफार करने को कोई इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र

समर्थ नहीं है। स्वामी कार्तिकेय में कहा है। स्वामी कार्तिकेय मुनि हुए हैं। बहुत पुराना दिगम्बर ग्रन्थ है। २२०० साल पहले। उन्होंने कहा है... आहाहा! भगवान तीर्थंकर भी ऐसे बाहर में चले गये। क्या कहते थे? स्वामी कार्तिकेय में।

मुमुक्षु :- पर्याय जिस काल में होनेवाली है...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, वह। स्वामी कार्तिकेय ने ऐसा लिखा है कि जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, उसको इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र... ऐसा स्वामी कार्तिकेय में है। आहाहा! अभी पढ़ते हैं न। आहाहा! फेरने को कोई समर्थ नहीं है। आहाहा! प्रभु! तेरी नजर बदल दे। उसके बिना कुछ नहीं है, व्यर्थ है। नजर अन्दर में दिये बिना बाहर की नजर की महिमा टूटेगी नहीं और बाहर की महिमा टूटे बिना अन्दर की महिमा आयेगी नहीं। आहाहा! पैसा हो, इज्जत हो, पुत्र हो, पाँच-पच्चीस लड़के ऊँचे नम्बर के... आहाहा!

वहाँ कहा न? नैरोबी में। पन्द्रह लोग तो अरबपति हैं। अभी। पन्द्रह। श्वेताम्बर में अरबपति। आहाहा! साठ घर मुमुक्षु के हैं। उसमें आठ तो करोड़पति हैं। आठ तो करोड़पति। अकेला पैसा... पैसा... पैसा दिखे। अरे..! धूल में (क्या है)? पैसा इतना कि जहाँ साधारण लाख, दो लाख तो पड़े हो, साधारण घर में। आहाहा! शिलिंग उनमें कहते हैं। उन लोगों में शिलिंग पड़ी हो। एक रुपये की एक शिलिंग। आहाहा! धूल है, कहा। भाई! हम २६ दिन रहे, पैंतालीस लाख इकट्ठा किया और पन्द्रह लाख पहले किये थे। साठ... लाख किया। उसमें है क्या? कहा। साठ लाख का क्या अरब कर न। वह तो जड़ परवस्तु है। परवस्तु अपनी है? और परवस्तु अपने से चलती है जाती है कि मैं दे सकूँ और ले सकूँ। आहाहा! बहुत कठिन बात। पैसा या शरीर या लक्ष्मी या इज्जत या कीर्ति, मैं लूँ या दूँ, वह चीज़ है ही नहीं। परद्रव्य को कभी छूता ही नहीं। आहाहा!

अभी आ गया न? तीसरी गाथा में कहा न? एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को कभी छुआ ही नहीं। आहाहा! कभी सुना ही नहीं। आहाहा! एक तो एक तत्त्व दूसरे को छूता नहीं। यह अंगुली इसको छूती नहीं। यह कौन माने? और एक क्रमबद्ध। एक के बाद एक क्रमपर्याय होनेवाली होती है। आगे-पीछे इन्द्र करने को समर्थ नहीं। आहाहा! और

उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। तो प्रत्येक द्रव्य में जो उत्पाद पर्याय उस समय होती है, जिस पर्याय को अपने ध्रुव और व्यय का भी आश्रय नहीं है। तीनों समय में स्वतन्त्र हैं। पर की आशा तो नहीं, परन्तु अपने में भी जो उत्पाद होता है, उसको व्यय का आश्रय नहीं है, उसको ध्रुव का आश्रय नहीं है। और पूर्व की पर्याय व्यय होती है, उसको उत्पाद और ध्रुव का आश्रय नहीं है। कौन माने? कौन समझे? आहाहा! समझ में आया? प्रवचनसार, १०२ गाथा। उसमें आया है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, कहाँ आया? **आत्मज्ञान का उजाला फैल रहा है।** एक ओर मुनि को देखो तो अन्धेरे में बैठे हों। अन्दर में देखो तो उजाला (है)। चैतन्यप्रकाश नूर का पूर। आहाहा! **बाहर से देखने पर भले ही मुनिराज सूर्य के प्रखर ताप में ध्यान करते हों,...** बाहर से तो प्रखर सूर्य के ताप में ध्यान (करते हो)। **परन्तु अन्तर में वे संयमरूपी कल्पवृक्ष की शीतल छाया में विराजमान हैं।** अन्तर में शान्तरस में, शान्तरस... आहाहा! शान्ति.. शन्ति.. शान्ति। शान्तरस का भण्डार भगवान आत्मा। शान्तरस का अर्थ अकषायभाव, चारित्रभाव, विकाररहित भाव। ऐसे शान्तरस से तो भरपूर भरा है भगवान आत्मा। आहा..! बाहर से देखो तो सूर्य के ताप में वे खड़े हैं। अन्दर से देखो तो शान्तरस में स्थिर हो गये हैं। आहाहा! अरे..! ऐसी बातें।

उपसर्ग का प्रसंग आये,... मुनिराज को। बाह्य में कोई सिंह, बाघ, सर्प ऐसा उपसर्ग (आये) **तब मुनिराज को ऐसा लगता है कि—'अपनी स्वरूपस्थिरता के प्रयोग का मुझे अवसर मिला है;...** आहाहा!

एकाकी विचरतो वळी स्मशानमां, गुजराती है।
वळी पर्वतमां वाघ सिंह संयोग जो,
अडोल आसन ने मनमां नहि क्षोभता,

— ऐसी भावना अन्तर आनन्द में... आनन्द में... आनन्द में... आनन्द में। ऐसा आसन तो अडोल परन्तु मन में क्षोभ नहीं। और सिंह एवं बाघ शरीर लेने को आया।

परम मित्रनो जाणे पाम्या योग जो।

यह शरीर मुझे रखना नहीं है और वह ले जाता है। तो वह मित्र है। आहाहा! यह मुनि की दशा!

उपसर्ग का प्रसंग आये, तब मुनिराज को ऐसा लगता है कि—'अपनी स्वरूपस्थिरता के प्रयोग का... अन्दर में लीन होने का प्रसंग मिला मुझे। आहाहा! उपसर्ग और परीषह पर उनका लक्ष्य नहीं है। आहाहा! आगे आयेगा। **अपनी स्वरूपस्थिरता के प्रयोग का मुझे अवसर मिला है;...** है? **इसलिए उपसर्ग मेरा मित्र है।** आहा..! श्रीमद् में आया न? 'परम मित्रनो जाणे पाम्या योग'। ध्यान में बैठे और सिंह-बाघ आया तो मित्र आया। मुझे शरीर रखना नहीं है, उसको लेना है, तो ले जाओ। मेरी चीज़ में वह नहीं है। आहाहा! ऐसा कठिन धर्म..! आहाहा! कायर सुनकर काँप जाए, ऐसा धर्म! वीतराग का ऐसा धर्म? बापू! मार्ग तो ऐसा है। दुनिया चाहे किसी भी दूसरे प्रकार से उसे बताये, कहे, माल तो दूसरा होता नहीं। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' आहाहा!

वह कहते हैं, **अन्तरंग मुनिदशा अद्भुत है;...** है अन्दर? **वहाँ देह में भी उपशमरस के ढाले ढल गये होते हैं।** आहाहा! देह में भी उपशमरस। ...

जिसको द्रव्यदृष्टि यथार्थ प्रगट होती है, उसे दृष्टि के जोर में अकेला ज्ञायक ही—चैतन्य ही भासता है, शरीरादि कुछ भासित नहीं होता। भेदज्ञान की परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है कि स्वप्न में भी आत्मा शरीर से भिन्न भासता है। दिन को जागृतदशा में तो ज्ञायक निराला रहता है परन्तु रात को नींद में भी आत्मा निराला ही रहता है। निराला तो है ही परन्तु प्रगट निराला हो जाता है।

उसको भूमिकानुसार बाह्य वर्तन होता है परन्तु चाहे जिस संयोग में उसकी ज्ञान-वैराग्यशक्ति कोई और ही रहती है। मैं तो ज्ञायक सो ज्ञायक ही हूँ, निःशंक ज्ञायक हूँ; विभाव और मैं कभी एक नहीं हुए; ज्ञायक पृथक् ही है, सारा ब्रह्माण्ड पलट जाय, तथापि पृथक ही है।—ऐसा अचल निर्णय होता है। स्वरूप-अनुभव में अत्यन्त निःशंकता वर्तती है। ज्ञायक ऊपर चढ़कर—ऊर्ध्वरूप से विराजता है, दूसरा सब नीचे रह जाता है॥३८९॥

जिसको द्रव्यदृष्टि यथार्थ प्रगट होती है,... क्या कहा? द्रव्य अर्थात् वस्तु भगवान। उसकी—द्रव्य की दृष्टि। दृष्टि अर्थात् यह पैसा नहीं। द्रव्य अर्थात् वस्तु आत्मा त्रिकाली।

द्रव्यदृष्टि यथार्थ प्रगट होती है, उसे दृष्टि के जोर में अकेला ज्ञायक ही—चैतन्य ही भासता है,... आहाहा! अन्तर की दृष्टि हुई आत्मा की तो ज्ञायक आत्मा अकेला भासता है। आहा..! मैं तो जानन-देखनवाला त्रिकाल (हूँ)। किसी का कर्ता-हर्ता, भोक्ता हूँ ही नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का सुनने मिले नहीं, वह प्रयोग कब करे? उसका ज्ञान कब करे? आहा..! दुनिया अनन्त काल से चार गति में भटक रही है।

यहाँ कहते हैं कि **जिसको द्रव्यदृष्टि...** द्रव्य अर्थात् वस्तु भगवान। त्रिकाली चीज़ सच्चिदानन्द प्रभु, उसकी दृष्टि **यथार्थ प्रगट होती है, उसे दृष्टि के जोर में अकेला ज्ञायक ही—चैतन्य ही भासता है,...** आहाहा! चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य भासता है। **शरीरादि कुछ भासित नहीं होता।** आहाहा! भासित नहीं होता है अर्थात् उसका तो ज्ञान होता है। वह तो अपने ज्ञान में शरीर जानने में आता है। आहा..! शरीर मेरा है, ऐसी बात तो है ही नहीं। परन्तु जहाँ अन्तर में सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ, सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ तो ज्ञान में शरीर सम्बन्धी ज्ञान अपने में अपने से होता है। आहाहा! अरेरे..! ऐसी बात। **अकेला ज्ञायक ही—चैतन्य ही भासता है, शरीरादि कुछ भासित नहीं होता।**

भेदज्ञान की परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है... आहाहा! पर से भेदज्ञान। राग का विकल्प दया, दान, भगवान की भक्ति, भगवान का दर्शन और शास्त्र का दर्शन, सब राग। राग से भिन्न। आहाहा! है? **भेदज्ञान की परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है कि स्वप्न में भी आत्मा शरीर से भिन्न भासता है।** आहाहा! स्वप्न में भी शरीर से प्रभु भगवान भिन्न है। आहाहा! ऐसी दृष्टि हो गयी है। ऐसी दृष्टि का नाम सम्यग्दर्शन है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)